लेख

महिलाओं के उत्तराधिकार हक़

मधु किश्वर व रूथ वनिता

1956 में हिन्दू उत्तराधिकार कानून पर संसद में बहस के दौरान श्रीमती उमू स्वामिनाधन ने इस कानून की वकालत और महिलाओं के लिए समान उत्तराधिकार हक़ की मांग करते हुए कहा, "मैं चाहूंगी की माननीय सदस्य केरल की तरफ ध्यान दें....अगर आप केवल इस पर गौर करें कि इतने वर्षों में वहां क्या हुआ है और क्या हो रहा है तो मुझे विश्वास है कि आप इस बात से सहमत होंगे कि.... उनके समान अधिकार होने से इस देश में कुछ भी अनर्थ नहीं होगा।"

फिर भी आज तक कितने लोग सोचते हैं कि औरत के समान उत्तराधिकार होने से कुछ गलत हो जाएगा। आज भी महिलाओं के समान विरासत अधिकार का विरोध करते हुए वही पचास साल पुरानी दलीलें पेश की जाती हैं। खैर इस कानून के पास होने से महिलाओं को माता-पिता की जायदाद में असमान अधिकार मिले पर वे भी सिर्फ़ कागज़ तक सीमित रहे। आज भी हमें औरतों के विरासत अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है क्योंकि हमारे देश की अधिकांश महिलाओं को पैतृक सम्पत्ति से वंचित रखा जा रहा है। अपने इस लेख में हम कुछ ऐसी बातों पर रोशनी डालेंगे जिसके कारण औरतें उत्तराधिकार हक़ों को पाने से महरूम रही हैं।

भूमि विखण्डन

भारत में खेती की ज़मीन आमदनी का प्रमुख साधन है। हिन्दू उत्तराधिकार कानून महिलाओं को पैतृक सम्पत्ति में अधिकार नहीं देता जिसके कारण कृषि भूमि में भी उनका हिस्सा नहीं होता। राज्य के प्रशासन ने भी औरतों की जमीन पर मिल्कियत के रास्ते में अनेक कानूनी अड़चनें पैदा की हैं। आम धारणा यह है कि औरतों को परिवार की ज़मीन में भागीदारी देने से ज़मीन का अत्यधिक विखण्डन होगा जो आर्थिक रूप से फायदेमंद नहीं है। पर कोई भी यह दलील नहीं देता कि सभी बेटों को भूमि अधिकार देने से भी अधिक विखण्डन होगा और इसलिए केवल परिवार के बड़े बेटे को ज़मीन पर हक़ मिलना चाहिए।

औरतों को ज़मीन पर अधिकार न देना भूमि विखण्डन की समस्या का हल नहीं है। भूमि का छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटने का कारण है ज़मीन पर अत्यधिक बोझ। बढ़ती जनसंख्या के कारण परिवार के ज़्यादातर लोग अपनी आजीविका चलाने के लिए ज़मीन पर निर्भर हैं जिससे अर्थव्यवस्था असंतुलित होती है। ग्रामीण इलाकों में कृषि के प्रति बेरुखी तथा खेती से पैदा हुई अतिरिक्त उपज का शहरी अमीरों के फायदे के लिए इस्तेमाल, ज़मीन पर आश्रित किसानों की तकलीफ़ें बढ़ाता है।

इस समस्या का कुछ हल भूमि सुधार कार्यक्रमों को ईमानदारी से लागू करने, कृषि को अधिक सक्षम बनाने के तरीकों तथा ग्रामीण गरीबों को वैकल्पिक रोज़गार साधन मुहय्या कराने से निकल सकता है। औरतों को ज़मीन पर उत्तराधिकार हक़ न देकर हमें उन्हें सत्ताहीन गरीब वर्ग से भी अधिक गरीब और अरक्षित बना रहे हैं। अगर एक ज़मीन का टुकड़ा तीन बेटों में बांटा जा सकता है तो कोई वजह नहीं है कि वह एक बेटी व दो बेटों के बीच न बांटा जा सके।

लड़कियां पराया धन होती हैं

एक दूसरी मशहूर दलील है कि बेटियां ब्याह कर ससुराल चली जाती है और पैतृक ज़मीन पर खेती नहीं कर पातीं। वे माता-पिता के व्यवसाय व घर दोनों से दूर रहती हैं लिहाज़ा सम्पत्ति पर उसके भाइयों का हक़ बनता है। दूसरी ओर लड़की अपनी ससुराल को अपना घर बना लेती है इसलिए मां-बाप की जायदाद पर उसका अधिकार नियंत्रित

होना चाहिए। इस दलील का अर्थ यह है कि शादी, ससुराल जाना और घर-गांव से दूर होना लड़कियों के लिए अनिवार्य है। पर हमारे देश में हर समुदाय के नियम-रिवाज भिन्न हैं। कुछ आदिवासी समुदायों में औरतें कुंवारी रहकर अपने मां-बाप के साथ खेती करती हैं। कुछ समुदायों में शादी के बाद लड़की का पति उसके मायके में आकर रहता है।

कुछ और तबकों में औरतें अपने ही गांव या पास के गांव में ब्याही जाती हैं। पर यही दलील देकर उन्हें भी उत्तराधिकार हक़ नहीं दिए जाते। बेटों का शहरों में पलायन या शहर से बाहर जाकर नौकरी करना या विदेश में जाकर पढ़ाई करना भी एक आम बात है। पर क्या वे पैतृक सम्पत्ति पर अपना अधिकार छोड़ देते हैं, नहीं? बल्कि इस अधिकार के दबाव में आकर वे अपने हिस्से की ज़मीन किराए पर उठा देते हैं। छुट्टियों में या सेवानिवृत होने के बाद वे अपनी ज़मीन पर वापस आकर बस जाते हैं। ज़मीन पर यह हक़ उनको आर्थिक व भावनात्मक सुरक्षा प्रदान करता है।

ज़मीन को लेकर कोई भी अहम निर्णय दूर रह रहे बेटे से सलाह-मश्विरा करके लिया जाता है जबकि पास में रहने वाली बेटी को दूसरे परिवार का सदस्य मानकर नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है।

दर्जे में यह फ़र्क़ समाज में औरत की सत्ताहीनता दर्शाता है। यह मानना मूर्खतापूर्ण होगा कि अपने परिवार से बेदखल की गई बेटी को ससुराल में पूरा सदस्य होने का रुतबा हासिल होगा। बहू व बेटी की यह सत्ताहीनता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक ऐसी संस्कृति जो बचपन से ही बेटी को 'पराया धन', 'मेहमान' आदि संज्ञाओं से सम्बोधित करती है वह बहू को भी धन-दौलत लाने वाली के रूप में ही मापती है। 'दुल्हन ही दहेज है' का नारा ससुराल में गूंजता तो है परन्तु बहू द्वारा लाये धन-उपहारों पर मिल्कियत उसके ससुरालवालों की होती है।

एक औरत जिसके पास मायके की सम्पत्ति पर अधिकार होगा वह अपने पति व ससुराल पक्ष से सशक्त होकर बात कर सकती है। वह एक निरीह प्राणी की जगह एक सबल व्यक्ति के रूप में जीवन निर्वाह कर सकेगी। जो माता-पिता बेटी को बेटों के समान दर्जा नहीं देते वह इस बात की कत्तई उम्मीद नहीं रख सकते कि उनकी बेटी को ससुराल में बराबरी का दर्जा और सम्मान मिलेगा।

बेटे बुजुर्ग माता-पिता की देखभाल करते हैं

इसका सीधा अर्थ है कि चूंकि बेटे बुढ़ापे में मां-बाप की देखभाल करते हैं इसलिए उन्हें जायदाद मिलनी चाहिए। पर यह तात्पर्य कि सम्पत्ति देखभाल के एवज़ में बेटों को मिलने वाला हक़ है, सही नहीं है। अगर मां-बाप की देखरेख उनके अपने बनाए व्यवसाय, जायदाद या पैसों से हो रही हो तो क्या यह दलील मायने रखती है? बेटियों के पास देखभाल का साधन हो तो क्या वे भी अपने माता-पिता की ज़िम्मेवारी नहीं उठा सकेगीं? आजकल काफी महिलाएं नौकरी करके अपने माता-पिता, परिवारों की आर्थिक मदद कर रही हैं। जो औरतें घर का काम, खेती या अन्य तरह से परिवार में योगदान देती हैं क्या उन्हें अपने माता-पिता को सहयोग देने का हक़ नहीं मिलना चाहिए?

दूसरी अहम बात-बुजुर्गों की देख-रेख में आर्थिक सहयोग के साथ-साथ सेवा-टहल, खान-पान और भावनात्मक प्यार-दुलार भी अहम होता है जो भूमिका औरतों यानी बहू या बेटी की होती है। बहू से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने मां-बाप की देखभाल न करे बल्कि प्यार और भावना के साथ सास-ससुर की सेवा करे।

कई बूढ़े माता-पिता अपनी बेटी के प्यार व देखभाल की ज़रूरत महसूस करते हैं। पर यह विडम्बना ही तो है कि एक ओर लड़की को उन रिश्तों को भूलना पड़ता है जिनके साथ वह पली-बढ़ी है और दूसरी ओर उसे एक अजनबी परिवार और उसके सदस्यों को दिल से अपनाना पड़ता है। परिवार के इस ढांचे के चलते घर-घर में तनाव, कुंठा और तकलीफ़ का माहौल बन जाता है।

मौजूदा ढांचे में बूढ़ी मां के पास भी जायदाद पर कोई अधिकार नहीं होते- वह अपने बेटों पर आश्रित हो जाती है। इस सम्पत्ति के विभाजन में बुजुर्ग माता-पिता या औरतें चाहे वह बेटी, बहू या मां हो का पूरा दायित्व बेटों पर होता है। अगर बेटे उनके साथ अच्छा व्यवहार न करें तो माता-पिता या औरतों के पास कोई विकल्प नहीं होते। हमारे भारतीय साहित्य में बूढ़े मां-बाप के उत्पीड़न, मायूसी और दुख के अनेकों किस्से हैं।

यह भी दलील दी जाती है कि विवाहित बेटी द्वारा माता-पिता की देखभाल हमारी संस्कृति के विरुद्ध है। हमारे समाज में बेटी की ससुराल में खाना-पीना वर्जित है। यह

रिवाज बेटियों को और अधिक कमतर और सत्ताहीन बनाता है। जो औरत अपनी मर्ज़ी से मेहमान-नवाज़ी नहीं कर सकती वह ससुराल की जायदाद में हक़ की मांग कैसे कर सकती है?

पर हमारे ही देश के दक्षिणी हिस्से में अभी भी बूढ़े माता-पिता अपनी विवाहित बेटियों के साथ रहना पसंद करते हैं न कि बेटों के साथ।

अगर माता-पिता की मृत्यु के बाद जायदाद का बंटवारा समान रूप से बेटे व बेटी में किया जाए तो किसी एक के लिए पूरी जायदाद पर कब्ज़ा करना और फिर माता-पिता को बेकार का बोझ मानकर दुर्व्यवहार करना संभव नहीं होगा। इसका यह भी फ़ायदा होगा कि मां-बाप अपनी मर्ज़ी से उसके पास रहेगें जहां उन्हें प्यार और आदर मिलेगा या फिर बारी-बारी से बच्चों के पास रह लेंगे। कहने का मतलब यह है कि माता-पिता किस बच्चे के पास रहेंगे यह उसके लिंग या जायदाद से तय नहीं होगा बल्कि आपसी सहमति और रिश्तों के आधार पर निश्चित होगा।

भाई-बहन के बीच प्यार खत्म हो जाएगा

बेटियों को जायदाद न देने के पीछे यह भी तर्क दिया जाता है कि इससे ईर्ष्या, कोर्ट-कचहरी जैसी बातों को बढ़ावा मिलेगा जिससे भाई-बहन के बीच प्यार नष्ट हो जाएगा। यह तर्क अटकलों पर आधारित है। भाई-भाई, बहन-भाई या बहन-बहन के बीच संबंध हमेशा अच्छे या बुरे नहीं होते और केवल बहन को हक़ देने से प्यार भरे संबंध खत्म हो जाएंगे कहना सही नहीं है। अगर रिश्ता इसलिए खूबसूरत है क्योंकि वह असमानता पर टिका है तो इस पर सवाल उठाना ज़रूरी है।

बहनों की अपनी ससुराल में इज़्ज़त इस बात पर टिकी रहती है कि उसके भाई उसे कितनी बार बुलाते हैं या उपहार देते हैं। यह व्यवहार इस बात का प्रमाण होता है कि लड़की अकेली नहीं है और उसके साथ मनमाना दुर्व्यवहार नहीं किया जा सकता। लड़कियां सत्ताहीनता और असुरक्षा के चलते भाइयों पर निर्भर रहती हैं। एक विवाहित लड़की अपनी बहन से भी आसानी से आर्थिक मदद या आश्रय नहीं मांग सकती। पर भाई का अपने परिवार में दर्जा ऐसा नहीं है। वह अपनी पत्नी पर उस तरह आश्रित नहीं होता जिस तरह उसकी बहन अपने पति पर निर्भर होती है। यानी समाज में बहन-भाई के बीच संबंध पुरुष की सत्ता और स्त्री की सत्ताहीनता पर आधारित हैं। इसके चलते भाई को हमेशा अपनी बहन को देना ही पड़ता है जिसके कारण भाभियों से मन मुटाव बढ़ता रहता है। इस लेन-देन का बोझ एक सहज दोस्ती और प्यार का रिश्ता पनपने नहीं देता।

अगर विरासत का बंटवारा समान रूप से हो तो भाइयों-बहनों के बीच एक बराबरी का रिश्ता बनेगा और ज़रूरत पड़ने पर दोनों एक दूसरे की सहायता कर सकेंगे।

दहेज बेटी का हिस्सा होता है

दहेज को बेटी का सम्पत्ति में हिस्सा नहीं समझा जा सकता क्योंकि जायदाद की तरह इस पर लड़की का पूर्ण नियंत्रण नहीं होता। इसके अतिरिक्त जायदाद बेटे की आजीविका और आत्म-निर्भरता को सशक्तता प्रदान करती है जबकि दहेज ससुरालवालों को लड़की को सुखी रखने की रिश्वत की तरह काम करके पति व ससुराल वालों पर उसकी निर्भरता को बढ़ाता है। दहेज के कारण लड़की को हिंसा-दुर्व्यवहार सहना पड़ता है क्योंकि ससुराल पक्ष का लालच बढ़ता जाता है।

लड़की को दुगुनी जायदाद मिलेगी

लड़कियों को जायदाद से अलग रखने के पीछे दी जाने वाली एक दलील यह भी है कि अगर उन्हें उत्तराधिकार हक़ दिए जाएं तो उन्हें दुगुनी जायदाद मिलेगी— पिता व पति से। पर अगर ऐसा हुआ तो पुरुषों को भी अपने पिता व पत्नी की जायदाद मिल सकेगी। हमारे देश में देखा गया है कि पुरुष अपनी पत्नियों की तुलना में अधिक लम्बी उम्र तक जीवित रहते हैं और पत्नी की मृत्यु के पश्चात उसकी सम्पत्ति उन्हें मिल जाती है।

कानूनी प्रावधान यह होना चाहिए कि अगर किसी महिला की अकाल या अप्राकृतिक मृत्यु हो जाए तो उसके माता-पिता की जायदाद से मिला उसका हिस्सा उसके पति को न मिले। वह उसके बच्चों में समान रूप से विभाजित हो या फिर उसके माता-पिता को वापस लौटा दिया जाए।

औरतें सम्पत्ति की देखभाल नहीं कर पातीं

ऐसा माना जाता है कि चूंकि औरतों के पास सम्पत्ति की देखभाल करने के अनुभव कम होते हैं इसलिए केवल जायदाद होने से उन्हें फायदा नहीं होगा। वैसे भी औरत की जायदाद की देखभाल उसके पति, भाई या अन्य सदस्य करते हैं। यह तर्क कुछ हद तक सही है। एक अरक्षित और बेदखल वर्ग अचानक अपने हक़ों की सुरक्षा करने की क्षमता विकसित नहीं कर सकता। धीरे-धीरे ही वे अपने संसाधनों पर नियंत्रण कर पायेगें। पर सिर्फ़ इस कारण से उन्हें विरासत से वंचित रखना सही नहीं होगा। केरल के अनुभव से हमने देखा है कि जायदाद मिलने से औरत की स्वायत्तता, आवाजाही और दर्जे में काफ़ी बेहतरी होती है।

सम्पत्तिहीन वर्ग क्या करे?

महिलाओं के उत्तराधिकार हक़ का विरोध यह भी कहकर किया जाता है कि यह बहस सिर्फ़ उस वर्ग के लिए है जिनके पास सम्पत्ति होती है। सच यह है कि जायदाद से हमारे मायने उन सभी चीज़ों से है जिससे इंसान को सशक्तता मिल सकती है।

धन के अलावा ज़मीन का एक छोटा सा टुकड़ा, मवेशी, पेड़, वाहन, लघु उद्योग आदि इस श्रेणी में आते हैं। कई दफ़ा कोई नौकरी बाप के बाद बेटे को दी जा सकती है या फिर कोई छोटा सा मकान, झुग्गी भी परिवार के पास होती है। नौकरी में आरक्षण, शैक्षिक आरक्षण आदि जैसे फायदे भी अधिकतर परिवार के मुखिया को सुपुर्द किए जाते हैं जिससे वह सबकी देखभाल कर सके। पर सच तो यह है कि यह रिवाज पुरुष और स्त्री के बीच असमानता को और बढ़ाता है। दादा अपने बेटे और बेटा अपने बेटे को ये वस्तुएं देता है। बेटियों को कुछ नहीं मिलता।

अगर हम औरतों के हालात बेहतर बनाने के लिए प्रतिबद्ध हैं तो हमें प्रयास करना होगा कि परिवार की मिल्कियत और सुविधाएं उनके हिस्से में भी आएं। हमने देखा है कि औरतें अपनी आय का बड़ा हिस्सा परिवार के ऊपर खर्च कर देती हैं। विरासत और जायदाद के बंटवारे के नियम बदलकर हम अपने समाज, परिवार और संस्कृति को और अधिक समान बना पाएंगे।

बेटियों को महरूम करने वाली वसीयत अवैध होगी

हमारे समाज में जहां लड़कियों को लिंग के आधार पर जायदाद से महरूम किया जाता है वहां ज़रूरी है कानूनी तौर पर बेटियों को सम्पत्ति में हिस्सा न देने वाली वसीयत को अवैध करार दिया जाए। कुछ लोगों ने यह डर ज़ाहिर किया है कि ऐसा करने से लड़कियों पर हिंसा और स्त्री भ्रूण हत्या को बढ़ावा मिलेगा। हो सकता है कि ऐसा हो परन्तु हमारे विचार में परिवार जायदाद से लड़कियों को वंचित रखने के लिए अलग रास्ते इख्तियार करेंगे। मौजूदा आंकड़े यह बताते हैं कि स्त्री भ्रूण हत्या और लड़कियों की बचपन में कम देखभाल से मृत्यु उन समुदायों में अधिक होती है जहां वे बोझ समझी जाती हैं। उन तबकों में जहां बेटियों को उत्तराधिकार का हक़ है उन्हें सम्मान और पूरा इंसान समझा जाता है। केरल का उच्च लिंग दर इसका प्रमाण है।

अंत में हम यही कहना चाहेंगे कि हालांकि कानूनी रूप से इस विचार का कार्यान्वयन आसान नहीं है परन्तु ज़रूरी है कि राज्य महिलाओं को समान उत्तराधिकार अधिकार दिलाने के प्रति अपनी वचनवद्धता को दिखाए। इसके लिए असमान कानूनों में संशोधन तथा लड़कियों को जायदाद में समान अधिकार देने वाले कानून बनाये जाएं। इनसे उन औरतों को भी अपने उत्तराधिकार पाने में सहायता मिलेगी जिन्हें धोखे, ज़बरदस्ती या फिर कानूनी तौर पर जायदाद से बेदखल कर दिया गया है। कानून और राज्य की मदद से औरतें अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर सकेंगी।

औरतों के साथ-साथ इन प्रयासों से पुरुषों के जीवन में भी बेहतरी आएगी। वे अपनी बहन-बेटियों के ब्याह की ज़िम्मेदारी उठाने की जीवन भर की परेशानी से मुक्त हो जाएंगे। ससुराल में लड़की को मान भी मिलेगा जिससे पिता-भाई को उनकी देखभाल और लेन-देन से राहत मिलेगी।

हम यह दावा नहीं कर रहे कि सम्पत्ति में हिस्सा कोई जादुई छड़ी है जिसे पाकर महिला सशक्त बन सकती है। पर हम यह ज़रूर मानते हैं कि जायदाद समानता और स्वतन्त्रता की राह पर मज़बूत सहारा बन सकती है।

मधु किश्वर व रूथ वनिता *मानुषी की सदस्य हैं।*
वे महिला संबंधी मुद्दों पर तीन दशकों से लिख रही हैं।
साभारः मानुषी अंक 57